International Journal of Applied Research 2019; 5(7): 321-327

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2019; 5(7): 321-327
www.allresearchjournal.com
Received: 23-05-2019
Accepted: 27-06-2019

डॉ. दयानिधि सा
सहायक प्राध्यापक, विभाग प्रमुख (हिन्दी विभाग), महात्मा गांधी स्नातक महाविद्यालय, भूक्ता, बारगढ़, ओड़ीशा, भारत।

Correspondence
डॉ. दयानिधि सा
सहायक प्राध्यापक, विभाग प्रमुख (हिन्दी विभाग), महात्मा गांधी स्नातक महाविद्यालय, भूक्ता, बारगढ़, ओड़ीशा, भारत।

उषा यादव की कहानियों में नारी विमर्श

डॉ. दयानिधि सा

प्रस्तावना

हिन्दी कहानी अपना सौ साल पुरा कर चुकी है। अपने सौ साल के सफर में हिन्दी कहानी ने अनेक चुनौतियों से गुजरते हुए अनेक उपलब्धियों हासिल की हैं। हिन्दी कथा साहित्य में तीन प्रमुख अंगों- उपन्यास, कहानी तथा लघुकथा में से कहानी की लोकप्रियता सर्वाधिक है। किशोरिलाल गोस्वामी की 'इन्दुमति' या इंशाअल्लाह खाँ की'रानी केतकी की कहानी' को यदि प्रथम कहानी के रूप में ग्रहण करें तो हिन्दी कहानी ने अब तक सौ साल से भी ज्यादा समय व्यतीत कर लिया है। हिन्दी की अद्वितीय कहानी'उसने कहा था' (श्री चंद्रधर शर्मा गुलेरी, 1916) का यह जन्मशती वर्ष है, जिसने अब तक अद्वितीयता कायम रख सकी है। इन सौ वर्षों की उपलब्धियों ने हिन्दी कहानी को कहानी, नई कहानी, अकहानी (प्रयाग शुक्ल), सचेतन कहानी (1964, महीप सिंह) सहज कहानी (अमृत राय) समांतर कहानी (1974, कमलेश्वर) जनवादी कहानी (1975) सक्रिय कहानी (1978, राकेश वत्स) सरीखे कई रूपों में स्थापित किया है। इन रूपों में ध्वनित अर्थ अपना–अपना स्वतंत्र महत्व प्रतिपादित करते हैं।

उषा यादव आठवें दशक की एक प्रतिष्ठित कथाशिल्पी हैं, जिन्होंने'सक्रिय कहानी'के कथात्मक आंदोलन के अंतर्गत सक्रिय कहानियाँ रची हैं। सक्रिय कहानी आंदोलन के पुरोधा श्री राकेश वत्स इसका साहित्यिक महत्व निर्धारित करते हुए लिखते हैं –'सक्रिय कहानी'का सीधा और सपाट मतलब है कि आम आदमी की चेतनात्मक ऊर्जा और जीवन्तता की कहानी।''[1] उषा यादव जी इसी कथात्मक आंदोलन की सक्रिय कर्मी हैं। आपका कहानी साहित्य समकालीन हिन्दी कहानी साहित्य में विशिष्ट स्थान अख़्तियार करती हैं। आप पूरी सामाजिक प्रतिबद्धता से कहानियाँ रचती हैं, जिसमें सम सामयिक जीवन समस्याएँ चित्रित होती हैं। आपके द्वारा रचित तीन कहानी संग्रह –'टुकड़े टुकड़ सुख', 'सपनों का इंद्रधनुष'एवं'जाने कितने कैक्टस'में दर्जनों

कहानियाँ संकलित हैं जो अपने समय की सच्चाई को रेखांकित करती हैं। आपकी कहानियाँ जीवन की प्रथम अनुभूतियों की कलात्मक अभिव्यक्ति हैं। आपकी कथा कृतियाँ यद्यपि व्यक्ति की विविध जीवन समस्याओं को रेखांकित करती हैं, जिनमें नारी –जीवन समस्याओं का विशेष महत्व है।

नारी विमर्श मूलतः नारी समाज का उत्कर्ष साधित करनेवाला एक साहित्यिक आंदोलन है। सभ्यता, संस्कृति, कला धर्म, विज्ञान राजनीति, अर्थनीति, कानून, साहित्य सरीखे क्षेत्रों में नारी विषयक चिंतन, विचार, तर्क–वितर्क तथा कल्पना की अभिव्यंजना ही नारी विमर्श है। नारी विमर्श ,नारीवाद या नारी मुक्ति पर एक चिंतन मनन है, यह एक विचारधारा है जो नारी स्वातन्त्र्य की वकालत करती है। नारी को पुरुष एवं नारी (मानव समाज) शोषण, अन्याय, अत्याचार से मुक्ति दिलाना और समाज की मुख्य धारा से जोड़ कर राष्ट्र–निर्माण तथा विश्व निर्माण में शामिल करना ही नारी विमर्श या नारिवाद का प्रदेय है। यह नारी अस्मिता व नारी चेतना का दूसरा रूप हैं जो नारी मुक्ति, नारी शक्ति, नारी स्वातन्त्र, नारी सशक्तिकरण जैसे मुद्दों पर कारगर कदम उठाता है। नारी विमर्श को परिभाषित करते हुए डॉ. सूर्यबाला लिखती हैं – "मेरी समझ में नारी जीवन का विश्लेषण ही नारी विमर्श है नारी को सम्पूर्ण अंतरंग और बहिरंग को समझने की कोशिश, आवरणों और जकड़नों को भेदकर बाहर आई स्त्री का मन, स्त्री की सोच दृष्टि समस्याओं, स्थितियों तथा मनः स्थितियों का विश्लेषण ही नारी विमर्श है।''[2]

आज़ादी के सत्तर साल गुजर जाने के बाद भी आज हम स्वस्थ-समृद्ध भारत का निर्माण नहीं कर पाये हैं। आज हमारे सामने ढेर सारी चुनौतियां खड़ी हैं, जिन्हें खत्म करना हमारी प्राथमिकता होनी चाहिए। नारी समाज के प्रति हमारी सोच आज भी हीनग्रस्त है। आज भी नारी हमारे बीच असुरक्षित हैं और अपनी सुरक्षा को लेकर संवेदनशील है। आए दिन नाबालिग लड़कियों के साथ, बहू–बेटियों के साथ, पत्नियों के साथ कई तरह के उत्पीड़न हो रहे हैं। आज नारी उत्पीड़न की शिकार हो रही है। वर्तमान कालीन समाज में नारी की यथार्थ स्थिति को डॉ॰ गिरधारी के इन शब्दों से समझा जा सकता है –"कितने आश्चर्य की बात है कि जो नारी सम्पूर्ण मानव जाति के मूल उत्स का साधन है, वही नारी पुरुष की अहं भावना की शिकार है। उसकी उद्दाम शक्ति और त्याग, पुरुष की हिराकत, तिरस्कार और उपेक्षा से पीड़ित है। नारी अस्तित्व को स्थापित करने के लिए कितना भी संघर्ष क्यों न करे, किन्तु व्यावहारिक स्तर पर उसे महत्व नहीं मिलता।"[3]

उषा यादव जी की कहानी 'आत्मजा' बेटी का एक स्वतन्त्र रूप प्रस्तुत करती है। यहाँ एक बेटी अपनी माँ की अपराधिक मनोवृत्ति के विरुद्ध कदम तो नहीं उठा पाती, पर अपनी भाभी को बचाने के लिए खुद को मिटा देती है। एक ननंद अपनी भाभी की जान बचाने के लिए खुद जहर खा देती है, यह अनोखा उदाहरण है। निम्नमध्यम वर्गीय परिवार की त्रासदी यहाँ चित्रित है। कहानी में माँ अपनी बेटी दीपा से कहती है कि किसी भी तरह से उसकी भाभी रुचिका की जीवन लीला समाप्त कर दे। दुष्ट चरित्रा सास अपनी बहू को दहेज के लिए प्रताड़ित करती है और बेटी दीपा को ताग़िद करती है कि आज काम तमाम करना होगा। दीपा अपनी भाभी की बड़ी इज्जत करती है और रुचिका भाभी भी अपनी ननंद दीपा को स्नेह करती है। उसे अपनी छोटी बहन की तरह प्यार करती है। दोनों के बीच सहेलियों जैसा संबंध है।

दीपा एक पढ़ी लिखी होनहार लड़की है। जब उसकी माँ रुचिका भाभी को मारने की फिराक में रहती है तो वह असमंजस्य में पड़ जाती है। वह अपनी भाभी के सामने कहती है – "औरत आज

भी अपनी हर समस्या का समाधान मौत में ढूंढती है। पति बेवफ़ाई करें तो आग लगाकर जल मरो, बाल–बच्चा न हो तो रेल पटरी पर जाकर कट मरो, माँ–बाप के पास देने को दहेज न हो तो फांसी लगाकर चल बसो।''[4] दीपा रात को अपनी भाभी के कमरे में जाती है और भाभी को काफी बनाने को कहती है। फिर दरवाजा बंद करने के लिए भेजती है और खुद की काफी में जहर की गोली डाल कर आत्महत्या कर डालती है। जीवन की अंतिम साँसें गिनती हुई दीपा अपने दहेज लोभी परिवार के सामने कहती है- "सिर्फ बेटी नहीं, बहू भी तो किसी की आत्मजा होती है।''[5] दीपा की यह उक्ति उस दहेज लोभी परिवार के मुँह पर एक करारा तमाचा है। उस परिवार को दीपा जैसी होनहार बेटी खोना पड़ता है। यहाँ दीपा का जहर खा कर आत्महत्या कर लेना उसकी हार है, जो सदैव वर्जित है।

शहर में आकर माँ घर की चार दीवारी में कैद हो कर रह गई है, जहां वह घुटन महसूस करने लगती है। ऊपर से बहू का रूखा व्यवहार उन्हें और ज्यादा मायूस कर देता है। माँ की सारी आज़ादी छीन ले गई है और चंदु उनके साथ पराया जैसा बर्ताव करता है। यहाँ तक कि बच्चे भी दादी से हंसी मज़ाक, बात–चीत नहीं कर पाते हैं। बृद्धा सास जब घर के नौकर से बात करना चाहती है तो बहू रोक देती है और हमेसा अपना स्टेंडर्ड बरकरार रखने को कहती है। वह पड़ोसी के घर से भेजवाए गए नास्ते भी खा नहीं पाती क्योंकि चंदु का आतंकराज पूरे घर में फैला हुआ है। माँ जब रसोई में पानी लेने जाती है तो चंदु बिफर जाती है और कड़े शब्दों में कहने लगती है –"जानती है, यह सोनू का गिलास है। आपने इसे क्यों उठाया, आपके कमरे में तो एक गिलास रखवा दिया है। उससे क्यों नहीं पानी पीती।''[6]

प्रोफेसर साहब अपनी ढीठ पत्नी की हरकतों के सामने घुटने टेक दिए हैं। वह अपनी पत्नी को एक शब्द कह नहीं पाते और मूक दर्शक बने रहते हैं। वह एक कठपुतली बनकर रहा गए हैं। लानत है ऐसे बेटे को, जो अपनी जन्मदात्री माँ की तकलीफ़ों को चुप-चाप देखता रहे और अपनी पत्नी के सामने मूक बना रहे। जो अपनी पत्नी का गुलाम हो, उसे चुल्लू भर पानी में डूब मरना चाहिए, फिर प्रोफेसर होने का क्या मतलब। बुढापे में माँ के सारें दांते टूट चुके है, इसलिए गरम रोटियाँ खाना चाहती है। क्योंकि दाँत के बिना वह ठंडी–बासी रोटियों चबाकर खा नहीं पाती। यह चंदु को बर्दाश्त नहीं हो पाता। वह कोठर स्वर में कह देती है –"क्या बात है माँ जी, चैन से क्यों नहीं रहती आप।''[7]

उम्र दराज माँ अपना अंतिम समय अपने बेटे–बहू तथा पोते–पोतियों के साथ शांति से बीता नहीं पाती। वह अपनी बदमाश बहू की हरकतों से सहम जाती है और अदृश्य दीवारों की कैद से बाहर निकलकर खुले आसमान के नीचे सांस लेने के लिए गाँव लौट आती है। आज हमारी पारिवारिक–सामाजिक मर्यादाएँ टूट रही हैं। बुजुर्ग माँ–बाप के प्रति हमारी ज़िम्मेदारी से हम भाग रहे हैं। बुढापे का सहारा बनने की बजाय आज हम अपने माँ–बाप को दरकिनार करके अपना प्राइवेट लाइफ एंजॉय करने में मशगूल हो रहे हैं। यह पश्चिमी सभ्यता की भड़ास नकल है, जिस से हम बचना होगा। यहाँ तक की एक नारी की दुश्मन नारी है, जो अपनी ही सासु माँ के प्रति अन्याय पूर्ण बर्ताव कर रही है।

वेदना' उषा जी के अनुभव संसार की एक अलग साहित्यिक अभिव्यक्ति है। यह एक मनोवैज्ञानिक कहानी है, जो एक निम्नवर्गीय परिवार की नारी की मानसिक दशा चित्रित करती है। नारी मन की वेदना बड़ी मार्मिकता से यहाँ रूपंकित है। चरण एक गरीब मजदूर है। वह अपनी पत्नी बसुधा के साथ मेहनत मजदूरी करके परिवार चलाता है। उनके दो बेटे हैं। तीसरी संतान के रूप में

हॉस्पिटल में एक बेटी पैदा होती है। बसुधा को बेटी होने का गम नहीं, क्योंकि पहले से उनके दो बेटे हैं। चरन भी बेटी पाकर बहुत खुश होता है। अक्सर देखा जाता है कि लोग बेटा पैदा होने पर जितना खुश होते हैं उतना बेटी होने पर नहीं। ऐसे लोग ये स्वीकार नहीं कर पाते कि आखिर बेटी भी तो बेटा है। व्यवहारीक तौर पर बेटे–बेटियों के बीच फर्क आ जाता है।

बसुधा की आर्थिक हालत कमजोर होने की वजह से अपनी नवजात शिशु की देख भाल के लिए एक आया नहीं रख पाती। अचानक एक दिन एक चोरनी आया बन कर आती है और बसुधा का दिल जीतने में जूट जाती है। वह औरत छोटी बच्ची की देख भाल करने लगती है। वह बसुधा की बच्ची को दुलारती हुई कहती है – "तेरा बाबू जल्दी से साग नहीं बना सका तो क्या हुआ। बुआ तो बनाकर ले आई है। वे रोटियाँ हटा ले। औरतों कि जरूरतें तेरा बाबू भला कैसे समझेगा।"[08] भोली बसुधा उस चोरनी की मनसा भला कैसे समझ पाती। भावुक होकर वह कहने लगती है – "तुम मेरे लिए इतना क्यों कर रही हो। मेरा तुम्हारा कोई रिश्ता भी नहीं।"[9]

बसुधा की जिंदगी में दुःख का तूफान तब खड़ा हो जाता है, जब वह आया उस बच्ची को चुराकर ले जाती है। अपनी बच्ची को खोने की वेदना उसकी प्रसव बेदना से भी बढ़ कर है। वह पड़ोस की औरतें को क्या समझाएगी कि वह बच्ची नाजायज थी, जिसे कहीं फेंक आई है। क्योंकि लोगों की उँगलियां हमेशा सहज भाव से गरीब औरतों की ओर उठ जाती हैं। चरण बसुधा को समझाता है कि पूछने पर कह देना कि बच्ची मर गई। बसुधा यहाँ वाकई बसुधा माता की तरह जीवन के सारे दुःख–संताप सहने को विवश है।

दर्प दंश ' नारी के वैधव्य जीवन की मर्मलिपि है। वैधव्य एक नारी के लिए अभिशाप बन जाता है। नारी आत्म निर्भर न बन पाने की वजह से पति की मौत से उसके जीवन में विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ता है। उसकी आर्थिक धुरी चरमरा जाती है। जबकि किसी पत्नी की मौत हो जाने पर पति के सामाजिक–आर्थिक जीवन पर विशेष असर नहीं पड़ता। एक विधुर पति जब दूसरी शादी करता है तो समाज उंगली नहीं उठाता, जबकि एक विधवा औरत के दूसरी शादी करने पर झट से उंगली नहीं उठ जाया करती है। उस औरत के प्रति लोग नफरत की नजर डालते हैं। इस विडम्बना को हम आज भी झेल रहे हैं, जिसे अपने अंदर से बाहर निकाल फेकना अति आवश्यक है।

दिवाकर एक नौकरी पेशा व्यक्ति है। वह किसी ऑफिस में काम करता है। उसके परिवार में पत्नी दिव्या, बेटा सचिन और बेटी प्रिया है। अचानक एक दिन दिवाकर के पेट में दर्द होता है और वह बुरी तरह बीमार पड़ जाता है। दिव्या अपनी पति की बीमारी के इलाज में सारा रूपया लगा देती है, पर बदकिस्मती से दिवाकर को बचा नहीं पाती। दिवाकर की मौत से परिवार की आर्थिक स्थिति बहुत खराब हो जाती है। दिव्या अपने बेटे सचिन को समझाती हुई कहती है "हमारी समझदारी इसी में है बेटा कि चादर देख कर पाँव फैलाएँ। नौकरी पेशा इन्सान की यही विड़म्बना है। कमाऊ मर्द के आंखें मूँदते ही घर में तबाही।''[10]

नारी धैर्य की प्रतिमूर्ति है। उसमें धीरज धारण करने की अपार शक्ति होती है। वह बड़े से बड़े दुःख को झेल सकती है, सह सकती है। परिस्थिति से सम्झौता करना वह जानती है। कुदरत ने नारी को जो धैर्यशक्ति, सहनशक्ति दी है, शायद पुरुष को नहीं। इसीलिए पुरुष नारी के मुक़ाबले कम सहनशील, धैर्यशील होता है। दिवाकर की मौत की खबर पाकर दिव्या के भैया राकेश गर्ग कानपुर के लिए निकाल पड़ते है, पर रास्ते में टूंडला स्टेशन पर हार्ट अटैक से उनकी मौत हो जाती है। भैया की मौत की खबर दिव्या को नहीं बताई जाती क्योंकि वह अपने पति और भैया दोनों की मौत

का सदमा बर्दाश्त न कर पाती और कुछ अनहोनी हो जाती। आखिर दिव्या को भैया की मौत की खबर जब लगी, वह तुरंत अपने बच्चों के साथ मायके पहुँच जाती है। भाभी को विधवा के रूप में देख कर उसे अपना दुःख छोटा लगने लगता है। दिव्या इसी सोच में डूबी रहती है कि – "पिछले बीस–पच्चीस दिन से अपने वैधव्य का दुःख पहाड़ लग रहा था, आज भाभी के दुःख के सामने उसका दुख छोटा नजर आ रहा है। छोटे–छोटे बच्चों के साथ कैसे इस मुसीबत से ऊबर सकेंगी भाभी।''[11]

'दूसरा सिद्धार्थ' नामक कहानी में नारी का स्वावलंबनशील व कामकाजी रूप दर्शित है। आज की नारी घर की चार दीवारी में कैद नहीं है। वह बाहर निकल कर आई है और नौकरी व्यवसाय तथा खेती बाड़ी करके परिवार का आर्थिक बोझ कंधे पर उठाने लगी है। वह पुरुष की तरह घर गृहस्थी चलाने लगी है। वह सभी क्षेत्रों में अपनी सक्रिय भागीदारी दर्ज करा रही है। यह कहानी एक ऐसे सिद्धार्थ की कथा कहती है जो अपने उत्तरदायित्व से भाग कर, घर छोड़ कर कहीं भाग गया है। दूसरा सिद्धार्थ के रूप में चेतन हमारे सामने आता है, जो अचानक घर से गायब हो जाता है। चेतन के घर छोड़ कर भाग जाने से बन्दना और उनके बच्चों पर विपत्ति का कहर टूट पड़ता है। पर चेतन की बहन बसुधा घर को सँभाल लेती है। वंदना अपना मंगल सूत्र बेच कर वसुधा को पढ़ाती है। वसुधा किसी भी तरह बी.एड. कर लेती है और उसी कॉलेज में अध्यापिका बन जाती है। लेखिका के शब्दों में – "पता नहीं किन अभावों से जूझते हुए वसुधा ने बी.एड. कर लिया और प्रिन्सिपल से विनती करके उसी कॉलेज में प्राध्यापिका बन गई। घर की रोजी रोटी का इंतजाम हो गया।''[12]

वसुधा नौकरी करके पैसा कमाकर घर की गाड़ी आगे बढ़ाती है। सभी बच्चों की पढ़ाई –लिखाई, खाना–पीना, कपड़ा–लता आदि का खर्च वसुधा ही उठाती है। भैया के घर संसार संभालते–संभालते वसुधा अपनी खुद की जिंदगी भुला देती है। वह अपनी हसरतों, तमन्नाओं की तिलांजलि दे देती है। वह केवल अपनी भाभी एवं भतीजे–भतीजियों की खुशी में अपनी खुशी तलाशती रहती है। वसुधा अपनी भाभी वंदना के प्रति दुराव रखती दिखाई पड़ती है। शायद वह भैया के घर छोड़ कर भागने के लिए वंदना भाभी को कुछ हद तक जिम्मेदार मानती है। लेखिका की कलाम से –"बच्चों के प्रति वह जितनी स्नेह शील थी, बच्चों की माँ के प्रति उतनी ही अनुदार थी। शायद सोचती होगी इसी औरत की गृहस्थी संभालने की खातिर वह जीवन की खुशियां हासिल न कर सकी और पैसा कमाने की मशीन बन कर रह गई।''[13]

यहाँ लेखिका ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि आज की नारी घर गृहस्थी अच्छी तरह से सँभाल सकती है और घर को एक मजबूत स्थिति में खड़ा कर सकती है। आज की नारी अपने हाथों में मेहंदी या कलाइयों में चुड़ियाँ पहनकर चूड़ियों की खनखनाहट एवं पैरों में पायल पहनकर घर की रौनकता ही नहीं बढ़ा सकती, कामकाजी बनकर घर ही नहीं ऑफिस, मोटर, रेल ,हवाई जहाज, लड़ाकू विमान ,बंदूक, टैंकर आदि भी चला सकती है, चला रही है। वह घर के साथ–साथ देश भी चलाने की साम्यर्थ रखती है। वह किसी भी क्षेत्र में पुरुष के मुक़ाबले पीछे नहीं है, पुरुष के साथ कदमताल करती हुई गतिशील है।

वेश्या वृत्ति नारी समाज के लिए कलंक है। नारी को आर्थिक तंगी की मार से बचने के लिए वेश्यावृत्ति अपनानी पड़ती है। यह वृत्ति नारी को नारकीय जीवन जीने के लिए मजबूर कर देती है। नारी जब एक बार इस रास्ते पर कदम रख देती है तो वह इस दल–दल में फँसती चली जाती है, उससे ऊबर नहीं पाती। पुरुष की वासना तृप्ति के लिए ही एक नारी वेश्या बनती है। 'रात और

प्रभात' कहानी में इसी वेश्या वृत्ति की दहशत तले दबी एक लड़की की जीवन कथा वर्णित है। यह एक प्रतीकात्मक कहानी है। यह दुःख और सुख का प्रतीक है जो हमारे जीवन के दो अनिवार्य पहलू है। दिन के बाद रात और रात के बाद प्रभात तथा सुख के बाद दुःख व दुःख के बाद सुख़ हमारे जीवन में आते रहते हैं। इस अनिवार्यता को हमें हर हाल में स्वीकार करना होगा।

इस कहानी की संवेदना की केंद्रबिन्दु है– रुही, जो बदकिस्मती से एक वेश्या की बेटी है। रुही का गुनाह सिर्फ इतना है कि वह एक वेश्या की कोक से पैदा हुई है। वह अपनी माँ की इस वेश्या वृत्ति से नफरत करती है, पर अपनी माँ को इस जलजला से निकाल नहीं पाती। रुही रफीफ नाम के एक लड़के से प्यार कर बैठती है और किशोरवस्था में महज पन्द्रह साल की उम्र में रफीफ से शादी कर लेती है। रफीफ को जब पता चलता है कि रुही एक वेश्या कि बेटी है, उसे घर से निकाल देती और एक अधेड़ उम्र कि औरत लच्छो मेहरीन से शादी कर लेता है। कालांतर में रुही आगे की पढ़ाई पूरी करके कॉलेज में प्राध्यापिका बन जाती है और अपने सहकर्मी दीपक से शादी करके नया घर संसार बसाती है।

प्रो. दीपक के हाथ जब रुही की डाइरी लगती है तो उसे रुही की लाइफ हिस्टरी पता चलती है। डायरी के अनुसार रफीफ रुही को प्रताड़ित करता है और आक्रोंश भरे लहजे में कहता है –"रंडी की औलाद मुझे झांसा देती है। मेरे नसीब में यह झूठन ही लिखी थी। इससे तो बेहतर था कि मैं अनव्याह रहता।"[14] रफीफ रुही को सिर्फ इसलिए अपनी जिंदगी से बेदखल कर देता है कि वह एक तबायफ की औलाद है। रुही अपनी माँ के पास आ जाती है और माँ के कहने पर आगे की पढ़ाई पूरी करने की ठानती है। वह अपना नाम रुही से नेहा के रूप में बदल देती है और दसवीं की परीक्षा प्राइवेट में फ़र्स्ट क्लास में पास करती है। इसी तरह से इंटर मिडिएट, ग्रेजुएट, पोस्ट ग्रेजुएट की परीक्षा उत्तीर्ण होकर कॉलेज में प्राध्यापिका बन जाती है।

नेहा की राम कहानी जानने के बाद प्रो. दीपक कहते हैं कि वेश्या के रूप में सारी जहालत झेलनेवाली अम्मा को हमारे पास ले आएंगे, यहीं हमारे पास रखेंगे। खुशी के आँसू से भीगी नेहा की आँखें इसे सच मानने को तैयार नहीं हो पातीं। नेहा शंका भरी आवाज़ में कहती है– "तुम अब भी मुझे अपनाने को तैयार हो।"[15] रफीफ के साथ रुही कि जिंदगी में काली अंधीयारी रात थी, अब दीपक के साथ सुख–शांति का प्रभात है। रफीफ के पुराने खयालात ने रुही के जीवन में जहर घोल दिया था, जबकि दीपक के अच्छे नए खयालात ने नेहा के जीवन में अमृत की धारा प्रवाहित करा दिया है।

उषा यादव की उपरोक्त तमाम कहानियां नारी विमर्श की जीवन दस्तावेज़ हैं। लेखिका ने नारी के प्रति संवेदनत्मक दृष्टि डालते हुए उनके विविध पक्षों का चित्र खींचने के साथ-साथ उसे पारिवारिक-सामाजिक हक दिलाने की वकालत की है। ताकि नारी पूरे सम्मान के साथ अपना जीवन जी सके और समाज की मुख्य धारा से जुड़कर राष्ट्र निर्माण में अपना 'क्रूसीयल रोल' अदा कर सके। डॉ॰ पुष्पा गायकवाड़ के शब्दों में यदि कहें- "उषा यादव आठवें दशक की सक्षम कथाकार हैं। इनकी कहानियों में अनुभव की गहराई तथा सामाजिक यथार्थ साफ-साफ दिखाई पड़ता है। उषा जी का कथानक पास-पड़ोस से उठाया गया होता है। इनकी कहानियों में महिला तथा पात्र दोनों ही जीवन्त हैं।"[16]

सन्दर्भ

1. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी –सं. – डॉ. रामकुमार गुप्त, पृष्ठ- 55

2. वर्तमान साहित्य: अंक मार्च-2008, सं- कुवरपाल सिंह, पृष्ठ -55
3. समकालीन हिन्दी कथा साहित्य: सृजन के विविध आयाम- डॉ. राधा गिरधारी, पृष्ठ-37
4. जाने कितने कैक्टस (कहानी संग्रह)- उषा यादव, पृष्ठ-38
5. जाने कितने कैक्टस (कहानी संग्रह)- उषा यादव, पृष्ठ-39
6. जाने कितने कैक्टस (कहानी संग्रह)- उषा यादव, पृष्ठ-79
7. जाने कितने कैक्टस (कहानी संग्रह)- उषा यादव, पृष्ठ-83
8. जाने कितने कैक्टस (कहानी संग्रह)- उषा यादव, पृष्ठ-162
9. जाने कितने कैक्टस (कहानी संग्रह)- उषा यादव, पृष्ठ-164
10. जाने कितने कैक्टस (कहानी संग्रह)- उषा यादव, पृष्ठ-40
11. जाने कितने कैक्टस (कहानी संग्रह)- उषा यादव, पृष्ठ-59
12. जाने कितने कैक्टस (कहानी संग्रह)- उषा यादव, पृष्ठ-71
13. जाने कितने कैक्टस (कहानी संग्रह)- उषा यादव, पृष्ठ-71
14. जाने कितने कैक्टस (कहानी संग्रह)- उषा यादव, पृष्ठ-131
15. जाने कितने कैक्टस (कहानी संग्रह)- उषा यादव, पृष्ठ-165
16. सठोत्तर हिन्दी कहानी में नारी- डॉ. पुष्पा गायकवाड, पृष्ठ-165